

संस्कृत भाषा उद्भव एवं विकास : वह्निवल्लय

उपन्यास के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. वन्दना शर्मा (शोध निर्देशक)

आचार्य संस्कृत

राजकीय कला महाविद्यालय,

कोटा, राजस्थान, भारत

विकास सिंह (शोधार्थी) संस्कृत

कोटा विश्वविद्यालय

कोटा, राजस्थान, भारत

प्रस्तावना

संसार की उपलब्ध भाषाओं में संस्कृत प्राचीनतम है। इस भाषा में प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का बहुत बड़ा भण्डार है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक इस भाषा में रचनाएँ होती रही हैं, साहित्य लिखा जाता रहा है। जिन दिनों लिखने के साधन विकसित नहीं थे, उन दिनों भी इस भाषा की रचनाएँ मौखिक परम्परा से चल रही थीं। उस परम्परा की रचनाएँ जो आज बची हैं, अक्षरशः सुरक्षित हैं। यही नहीं उनके उच्चारण की विधि भी पूर्ववत् है उसमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है।

संस्कृत भाषा को देववाणी या सुरभारती कहा जाता है। इस भाषा में साहित्य की धारा कभी नहीं सूखी, यह बात इसकी अमरता को प्रमाणित करती है। मानवजीवन के सभी पक्षों पर समान रूप से प्रकाश डालने वाली इस भाषा की रचनाएँ हमारे देश की प्राचीन दृष्टि की व्यापकता सिद्ध करती हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (सम्पूर्ण पृथ्वी ही हमारा परिवार है) का उद्घोष संस्कृत भाषा साहित्य की ही देन है।

संस्कृत भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भारोपीय परिवार की भाषा है। ग्रीक, लैटिन, अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी, स्पेनी आदि यूरोपीय भाषाएँ भी इसी परिवार की भाषाएँ कही गई हैं। यही कारण है कि इन भाषाओं में संस्कृत शब्दों जैसी ही ध्वनि और अर्थ वाले अनेक शब्द मिलते हैं। ईरानी भाषा तो संस्कृत से बहुत अधिक मिलती है। पिछले दो सौ वर्षों में यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत का पर्याप्त अध्ययन इन भाषाओं से तुलना के आधार पर किया है। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा विदेशों में अत्यधिक आदर पा चुकी है। आज भी यूरोपीय भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन करने के लिए संस्कृत का अनुशीलन विदेशी शिक्षा संस्थाओं में भी अनिवार्य रूप से किया जाता है।

हमारे देश की प्रायः सभी आधुनिक भाषाएँ संस्कृत से जुड़ी हैं। हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, ओड़िआ, असमिया, पंजाबी, सिन्धी आदि भाषाएँ भी इससे विकसित हुई हैं। दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम में भी संस्कृत के बहुत से शब्द मिलते हैं जिन्हें उन

भाषाओं ने अपने ढंग से अपनाया है। इसी प्रकार दक्षिण भारत की इन द्रविड़ भाषाओं से संस्कृत ने भी समय-समय पर अनेक शब्द लिए हैं तथा उन्हें अपने रूप में ढाल लिया है। यही कारण है कि पृथक् भाषा परिवारों के होने पर भी दोनों का परस्पर सामञ्जस्य है। संस्कृत भाषा ने राष्ट्र की एकता के लिए बहुत बड़ा कार्य किया है। विष्णु पुराण की उक्ति है :

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।

वर्षं तद् भारतं प्राहुर्भारती यत्र सन्ततिः॥

जो देश (वर्ष) समुद्र (हिन्द महासागर) के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में अवस्थित है उसे पहले के लोगों ने 'भारत' कहा है। वहाँ की प्रजा 'भारती' (भारतीय) कहलाती है। संस्कृत भाषा सहस्रों वर्षों से चली आ रही है। इस अवधि में इसका रूप परिवर्तित होता रहा है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार आधुनिक भाषाओं तक इसके विकास की इसका विकास की प्रक्रिया इस प्रकार रही है :

1 प्राचीन आर्य भाषा काल (6000 ई.पू. से 800 ई. पू) : इस काल में वैदिक भाषा और प्राचीन संस्कृत भाषा के विकास की प्रक्रिया चलती रही।

2 मध्यकालीन आर्य भाषा काल (800 ई.पू. से 1000 ई) : इस काल में पालिए प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। शिक्षित समाज में संस्कृत का प्रयोग होता रहा तथा अधिकांश प्रामाणिक ग्रन्थ इसी समय में लिखे गए। इस काल में जनसामान्य में संस्कृत भाषा का प्रयोग बहुत अधिक नहीं रहा, किन्तु इसके प्रति सम्मान का भाव पूर्ववत् बना रहा।

3 आधुनिक आर्य भाषा काल (1000 ई. से अब तक) : इस काल में विभिन्न प्रदेशों में बोली जाने वाली अपभ्रंश भाषाओं से आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ। द्रविड़ पक्षिर की

भाषाओं को छोड़कर हिन्दी, मराठी आदि सभी भाषाएँ इसके अंतर्गत हैं। इन सभी भाषाओं में पर्याप्त साहित्य रचा गया। इस काल में भी संस्कृत भाषा द्वितीय युग के समान शिक्षित जनसमुदाय में प्रचलित रही, इसमें रचनाएँ भी होती रहीं। प्रादेशिक भाषाओं में भी मुख्यतः ग्रन्थ-लेखन का कार्य उन्हीं लोगों ने किया, जो संस्कृत के पण्डित थे, क्योंकि संस्कृत भाषा के अभाव में शिक्षा की कल्पना ही नहीं हो सकती थी। इस काल में विदेशी शासन का आरम्भ हुआ जिससे तुर्की, अरबी और फारसी भाषाएँ भारत में शासकों द्वारा लाई गईं। इनका प्रभाव आधुनिक आर्य भाषाओं के शब्दकोश पर पड़ा, जिससे बहुत से नए शब्द इन भाषाओं से आर्य भाषाओं में आ गए। संस्कृत भाषा इस आदान-प्रदान से अधिक प्रभावित नहीं हुई।

भाषा के रूप

किसी भी भाषा के दो रूप होते हैं : व्यावहारिक अर्थात् बोलचाल में आने वाली भाषा तथा स्थिरता पाने वाली साहित्यिक भाषा। बोलचाल की संस्कृत भाषा का प्राचीन रूप भास, कालिदास, शूद्रक आदि के नाटकों में प्राप्त होता है। सामान्यतः संस्कृत में जो साहित्य सुरक्षित है वह उसके साहित्यिक रूप का प्रतिनिधि है।

निश्चित रूप से बोलचाल की भाषा सरल तथा रूढ़िमुक्त रहती है। दूसरी ओर साहित्यिक भाषा परिष्कृत तथा अलंकृत होने लगती है। बोली जाने वाली संस्कृत भाषा व्याकरण और उच्चारण के अनुशासन से मुक्त होकर धीरे-धीरे पालि, प्राकृत आदि की ओर बढ़ा। परवर्ती भाषाओं के रूप में बदल गई, जबकि इसका साहित्यिक रूप क्रमशः कठिनाईभरा रहा।

संस्कृत का साहित्यिक विकास

प्राचीन आर्य भाषा काल में संस्कृत के अनेक रूप मिलते हैं, किन्तु इस काल के अन्त में जब पाणिनि (700 ई.पू.) के व्याकरण से इसे परिनिष्ठित रूप मिला, तब रूपों की अस्थिरता समाप्त हो गई और भाषा एक ही रूप में स्थिर हो गई। इस काल के बाद सभी संस्कृत ग्रन्थ इसी नियत भाषा में लिखे गए। इसका परिणाम यह हुआ कि संस्कृत की वाचिक धारा पालि, प्राकृत आदि भाषाओं के रूप में परिवर्तित हो गई। संस्कृत का रूप तो आज तक पाणिनि के व्याकरण पर ही आश्रित है परन्तु इसमें अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का आगमन होता रहा। पाणिनीय व्याकरण का अनुसरण करने वाले संस्कृत साहित्य को लौकिक साहित्य कहते हैं। वस्तुतः इस शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य से भिन्न समस्त संस्कृत साहित्य के लिए किया जाता है। इस अर्थ में लौकिक संस्कृत साहित्य, रामायण, महाभारत और पुराणों को भी समाविष्ट कर लेता है, भले ही इनमें पाणिनि के नियमों का यत्र-तत्र उल्लंघन भी है।

संस्कृत में साहित्यिक भाषा की क्रमशः दो धाराएँ मिलती हैं : वैदिक संस्कृत की धारा तथा लौकिक संस्कृत की धारा। वैदिक संस्कृत की धारा भी अनेक रूपों में है। प्राचीनतम वेद ऋग्वेद की भाषा अन्य सर्वत्र एक समान नहीं है। अन्य वेदों में जो भाषा का रूप प्राप्त होता है, उसमें सरलीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। शब्दरूपों और धातुरूपों की अनियमितता तथा अनेकता क्रमशः दूर होती जाती है। अन्य वेदों में हमें गद्य भी मिलता है जबकि पूरी ऋग्वेद संहिता पद्यात्मक है। संहिताओं के बाद उनकी व्याख्याओं के रूप में ब्राह्मण आरण्यक तथा उपनिषद् ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। यद्यपि इन सब में

सामान्य रूप से वैदिक संस्कृत ही प्रयुक्त है किन्तु वह संस्कृत लौकिक संस्कृत की ओर अभिमुख दिखाई पड़ती है।

वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के सन्धिकाल में हमें रामायण तथा महाभारत जैसे ग्रन्थ मिलते हैं। इन ग्रन्थों की भाषा में वैदिक वाक्यों जैसी सरलता है तथा जटिल शब्दरूपों का अभाव है। इन ग्रन्थों की भाषा ने लौकिक संस्कृत साहित्य को विकास का मार्ग दिखाया। इसी काल में संस्कृत व्याकरण के सुप्रसिद्ध लेखक पाणिनि का आविर्भाव हुआ जिन्होंने अपने समय में प्रचलित संस्कृत भाषा का व्यापक अनुशीलन करके 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रन्थ में भाषा सम्बन्धी नियम बनाए। उन्होंने तुलना के लिए वैदिक भाषा के विषय में भी अपने निष्कर्ष को सूत्र रूप में उपस्थित किया। पाणिनि ने वेदों की भाषा को सामान्य रूप से छन्दस् और लौकिक संस्कृत को केवल भाषा कहा है। पाणिनि के बाद विकसित संस्कृत साहित्य में उसी भाषा का उपयोग होने लगा। कवियों और लेखकों की शैली में जो भी अन्तर रहा हो, भाषा वही रही। अन्य वैयाकरणों ने भी पाणिनि के द्वारा स्थापित भाषा को ही मानक स्वीकार कर अपने-अपने व्याकरण लिखे।

संस्कृत के साहित्यिक विकास को चार चरणों में देख सकते हैं 1 वैदिक साहित्य, 2 रामायण व महाभारत 3 मध्यवर्ती संस्कृत साहित्य तथा 4 आधुनिक संस्कृत साहित्य। शास्त्र ग्रन्थों की रचना सभी चरणों में होती रही थी। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इन चरणों का काल इस प्रकार माना जा सकता है :

- 1 वैदिक साहित्य (6000 ई.पू. से 800 ई.पू.),
- 2 रामायण व महाभारत (800 ई.पू. से 300 ई.पू.)
- 3 मध्यवर्ती संस्कृत साहित्य (300 ई.पू. से

1784 ई.) जिसमें महाकाव्य, नाटक, खण्डकाव्य आदि विधाओं के सरल तथा अलंकृत ग्रन्थ लिखे गए) एवं 4 आधुनिक काल (1784 ई. से आज तक)।

वैदिक और लौकिक संस्कृत में भेद

संस्कृत भाषा के वैदिक रूप में सभी वेदों की संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् ग्रन्थ लिखे गए हैं। इसके लौकिक रूप में वेदों का उपयोग बतलाने वाले वेदाङ्ग ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, नाटक, काव्य, कथा साहित्य, आयुर्वेद आदि से संबद्ध ग्रन्थों की रचना विभिन्न युगों में हुई। वैदिक संस्कृत में मुख्यतः धर्मप्रधान साहित्य की रचना हुई जिसका उपयोग यज्ञ आदि में होता था। लौकिक संस्कृत में जीवन के अन्य अनेक पक्ष भी मिलते हैं। वैदिक संस्कृत का आरम्भ तो पद्य से ही हुआ किन्तु धीरे-धीरे गद्य का भी साम्राज्य छा गया। लौकिक संस्कृत में पुनः पद्य की प्रतिष्ठा हुई और गद्यरचना का क्षेत्र सीमित हो गया। गद्य लिखना कठिन माना जाने लगा। वैदिक भाषा के छन्दों से लौकिक संस्कृत के छन्दों में भी भिन्नता आई। इस प्रकार संस्कृत के छन्दों में अधिक विविधता आ गई।

भाषा की दृष्टि से वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत से बहुत भिन्न है किन्तु यह भिन्नता ऐसी नहीं, जैसी संस्कृत और प्राकृत में है। संस्कृत और प्राकृत में ध्वनिगत अन्तर का प्राचुर्य है, जबकि वैदिक और लौकिक संस्कृत में ध्वनिगत अन्तर शून्यप्राय है, विशेष रूप से शब्दगत भेद ही अधिक है। दोनों एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। वैदिक संस्कृत में शब्द रूप संख्या में अधिक थे, लौकिक संस्कृत में कम, जैसे संस्कृत शब्दरूप गन्तुम् (जाने के लिए) है। वैदिक भाषा में इसके अतिरिक्त इसी अर्थ में

गन्तवे, गमध्यै, गन्तोः इत्यादि कई रूपों के प्रयोग थे। अकारान्त शब्दों के प्रथमा बहुवचन में प्रियाः, प्रियासः जैसे दो रूप वैदिक संस्कृत में थे, तृतीया बहुवचन में भी प्रियैः प्रियेभिः जैसे दो रूप यहाँ थे, लौकिक संस्कृत में ये कम होकर, केवल प्रियाः और प्रियैः ही रह गए। इस प्रकार दोनों भाषाओं में मुख्य अन्तर वैदिक भाषा में शब्दों के वैकल्पिक रूपों की अधिकता और लौकिक संस्कृत भाषा में शब्दों के वैकल्पिक रूपों की न्यूनता है।

आधुनिक आर्य भाषाओं से संस्कृत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऊपर कहा गया है कि संस्कृत भाषा से ही प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। ये भाषाएँ जनसामान्य में प्रचलित हुईं। संस्कृत नाटकों में भी इनका प्रयोग कुछ पात्रों के संवाद के रूप में होने लगा। इसमें स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे गए जिनमें काव्यों की संख्या अधिक थी। उधर आरम्भिक बौद्ध साहित्य पालि भाषा में लिखा गया। जैन धर्म के ग्रन्थ अर्धमागधी (प्राकृत का एक भेद) में लिखे गए। प्रथम शताब्दी ई. के बाद से इन धर्मों के ग्रन्थ संस्कृत में भी लिखे जाने लगे। प्राकृत का विकास उत्तरी और मध्य भारत के विविध क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में हुआ। इसलिए प्राकृत के महाराष्ट्री (महाराष्ट्र में), शौरसेनी (पश्चिमी उत्तर प्रदेश में), मागधी (पूर्वी भारत में), अर्धमागधी (पूर्वी उत्तर प्रदेश में) तथा पेशाची (सिन्ध और पश्चिमोत्तर भारत में)। ये मुख्य भेद हैं, जबकि उपभेदों की संख्या अधिक है।

इन प्राकृतों से उन-उन नामों वाली अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। ये भी विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध हुईं। इस काल में संस्कृत शब्द रूपों की विभक्तियों को मूल शब्द से पृथक् किया गया तथा नये-नये विभक्ति-चिह्नों का विकास हुआ।

क्षेत्रीय अपभ्रंश भाषाओं ने पृथक्-पृथक् आधुनिक आर्य भाषाओं को जन्म दिया। महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी, शौरसेनी से हिन्दी, खस अपभ्रंश से पहाड़ी, ब्राज्म से गुजराती और सिन्धी, मागधी से बिहार की भोजपुरी, मैथिली और मगही के अतिरिक्त बंगला, ओड़िआ और असमिया तथा अर्धमागधी से पूर्वी उत्तर प्रदेश की बोलियाँ निकलीं। इस प्रकार आधुनिक आर्य भाषाएँ संस्कृत से विकसित हैं। संस्कृत का व्यापक प्रभाव इन सब पर है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास का उद्देश्य

संस्कृत भाषा और साहित्य के विकास का ज्ञान उसके इतिहास से मिलता है। युगों से विभिन्न प्रवृत्तियों के कारण जो साहित्य-प्रकार विकसित हुए हैं उनका आकलन इतिहास में होता है। हजारों ग्रन्थों की राशि में गुण और महत्त्व की दृष्टि से चुने हुए ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय इतिहास दे देता है तथा पूरे वाङ्मय में उस ग्रन्थ की स्थिति भी बताता है। अकेले पाठक को सम्पूर्ण वाङ्मय का कम समय में परिचय देना इतिहास का काम है। संस्कृत भाषा न जानने वाले लोग भी साहित्य के इतिहास से ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों के विषय में एवं उनके उद्भव की स्थितियों को जान सकते हैं। यह संस्कृत साहित्य के इतिहास की उपयोगिता है।

संस्कृत साहित्य एवं समकालीन प्रवृत्तियाँ

विभिन्न युगों में जो संस्कृत साहित्य का विकास हुआ वह तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप था। साहित्य के अनुशीलन से उन परिस्थितियों का अनुमान होता है। वस्तुतः जनसामान्य को ध्यान में रखकर ही साहित्यिक-प्रवृत्तियाँ पनपती हैं। वैदिक साहित्य के विकास में तत्कालीन धार्मिक जीवन का आभास मिलता है। उस युग में यह

भाषा लोकव्यवहार में भी थीए किन्तु यज्ञानुष्ठान, नैतिक नियमों का अनुपालन तथा प्रकृति के उपादानों के प्रति श्रद्धा की भावना का मूल्य अधिक होने से इन पर बल देने वाला वैदिक साहित्य ही सुरक्षित रह सका है। लौकिक साहित्य में लौकिक भावनाओं का प्रकाशन करने वाली सामग्री अत्यल्प है।

लौकिक संस्कृत साहित्य के आरम्भ काल में रामायण में सुन्दर भाषा में आदर्श की स्थापना की गई, जबकि महाभारत में इतिहास के बहाने राजनीति, धर्म, समाज और संस्कृति का यथार्थ प्रकाशित हुआ। पुराणों में सम्पूर्ण भारत के तीर्थस्थलों, आख्यानों एवं आरम्भ किया था, किन्तु इसवी सन् के प्रारम्भ से दोनों को शास्त्रीय विचार-विमर्श के लिए संस्कृत का आश्रय लेना पड़ा। पाषाणों, ताम्रपत्रों आदि में अंकित अभिलेख (कुछ अपवादों को छोड़कर), संस्कृत में ही हैं। चीनी यात्री वेन्त्सांग (629 ई. से 643 ई. के बीच भारत भ्रमण करने वाला) के अनुसार बौद्ध लोग सामान्य वाद-विवाद में संस्कृत का प्रयोग करते थे। रामायण और महाभारत का सामान्य जनता में पाठ होता था, जो संस्कृत के सर्वजनगम्य होने का प्रमाण है। कश्मीरी कवि बिल्हण कहते हैं कि उनके प्रदेश में स्त्रियाँ भी संस्कृत-प्राकृत दोनों भाषाएँ समझती हैं, दूसरों का क्या कहना ?

यत्र स्त्रीणामपि किमपरं मातृभाषावदेव।

प्रत्यावासं विलसति वचः प्राकृतं संस्कृतं च।

(विक्रमाङ्कदेवचरित) (18.6)

यह भी ज्ञातव्य है कि दिल्ली सल्तनत के समय (1206 ई. से 1526 ई.) भी अनेक संस्कृत अभिलेख किसी लोक-कल्याण-कार्य के स्मारक के रूप में लिखे गए। भारत के दक्षिण-पूर्वी उपनिवेशों (इंडोनेशिया, थाइलैंड इत्यादि) में

चौदहवीं शताब्दी ई. तक राजभाषा के रूप में संस्कृत का प्रचलन था। वहाँ के संस्कृत अभिलेख इसे प्रमाणित करते हैं।

ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि आरम्भ में प्रायः ईसवी सन् की कुछ शताब्दियों तक जनसामान्य में संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था। कालक्रम से यह शिष्टजनों तक शिक्षा ग्रन्थ-रचना, वाद-विवाद, शास्त्रार्थ आदि के क्षेत्र में सीमित हो गई। साहित्य-रचना के क्षेत्र में वर्तमान युग तो संस्कृत का वास्तविक स्वर्ण युग है।

ध्यातव्य बिन्दु

संस्कृत संसार की प्राचीनतम भाषा है।

संस्कृत भाषा की रचना-धारा निरन्तर प्रवाहशील है।

‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ यह उद्घोष संस्कृत भाषा की ही देन है।

संस्कृत भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भारोपीय परिवार की भाषा है। ग्रीक, लैटिन, अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी, स्पेनी आदि यूरोपीय भाषाएँ इसी परिवार की भाषाएँ हैं।

सभी आधुनिक भारतीय भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं, जैसे हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, ओड़िया, असमिया, पंजाबी, सिन्धी आदि।

आधुनिक भाषाओं की विकास प्रक्रिया इस प्रकार है :

प्राचीन आर्य भाषा काल

इस काल में वैदिक भाषा और प्राचीन संस्कृत भाषा के विकास की प्रक्रिया चली।

मध्यकालीन आर्य भाषा काल

इस काल में पालि प्रकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ।

आधुनिक आर्य भाषा काल

इस काल में विभिन्न प्रदेशों में बोली जाने वाली अपभ्रंश भाषाओं से आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ।

भाषा के रूप भाषा के दो रूप होते हैं

व्यावहारिक भाषा : बोलचाल की भाषा

साहित्यिक भाषा : साहित्य में प्रयुक्त भाषा

संस्कृत साहित्य का विकास : साहित्यिक भाषा की दो धाराएँ हैं

वैदिक संस्कृत की धारा

लौकिक संस्कृत की धारा

वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के सन्धिकाल में रामायण तथा महाभारत ग्रन्थों की रचना हुई।

रामायण तथा महाभारत से ही लौकिक संस्कृत का आरम्भ हुआ। इसी बीच सुप्रसिद्ध विद्वान् पाणिनि का आविर्भाव हुआ जिन्होंने अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ में भाषा-सम्बन्धी नियम बनाए।

संस्कृत का साहित्यिक विकास चार चरणों में विभक्त है।

वैदिक साहित्य (6000 ई.पू. से 800 ई.पू.)

रामायण-महाभारत (800 ई.पू. से 300 ई.पू.)

मध्यवर्ती संस्कृत साहित्य (300 ई. से 1784 ई.)

आधुनिक काल (1784 से आज तक)

वैदिक और लौकिक संस्कृत में भेद

वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्

लौकिक वेदाङ्ग, रामायण, महाभारत, नाटक, काव्य, कथा साहित्य, आयुर्वेद इत्यादि तथा वैज्ञानिक साहित्य।

संस्कृत भाषा संसार की अत्यन्त प्राचीन भाषा है।

इसमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति से सम्बद्ध रचनाओं का बहुत बड़ा भण्डार है। इस भाषा में प्राचीन समय से आज तक रचनाएँ होती आ रही हैं। यह भाषा भारोपीय (इंडो यूरोपियन) परिवार की भाषा है।

प्रायः 6000 ई.पू. में वैदिक अर्थात् प्राचीन संस्कृत भाषा का विकास माना जाता है। 700 ई.पू. में पाणिनि ने इसे परिनिष्ठित रूप दिया। इस काल के बाद सभी संस्कृत ग्रन्थ इसी भाषा में लिखे गए। इस प्रकार संस्कृत के वैदिक और लौकिक दो रूप सामने आते हैं। आधुनिक आर्य भाषाओं का संस्कृत से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का विकास भी वैदिक तथा लौकिक संस्कृत से ही हुआ है। क्षेत्रीय अपभ्रंश भाषाओं से विभिन्न आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ है। इस प्रकार संस्कृत समस्त आर्य भाषाओं की जननी है। वह्निवलय उपन्यास के विशेष सन्दर्भ में

प्रथम भाग

अयि अन्तर्यामिन्। कृष्णा किं वा भवतः अगोचरम् ? जानामि, तथापि पुनरपि लिखामि अहं मम जीवनचरितम्। हृद्योन्मोचने दुःखभारः लघु भवति। तेन सह अहं मम दोषान् दुर्बलमनोभावान् अपि प्रकाशयिष्यामि तदर्थं यदि कश्चन मयि दोषारोपणं करोति, तदा अहम् अकर्तव्या। अहं देवी नास्मि, मानवी। अतः भ्रमभ्रान्तिभ्यः परं न गता। तद्ध वीर प्रसविनी, राजमाता कुन्ती अद्य अरण्यवह्निवलये तिलं तिलं भूत्वा दग्धा भवति। जीवनस्य क्षताक्तमुहूर्तं पवमानान्नये जुहोति।”

मृत्युः मम देहलन्नः हे कृष्णा! अस्मिन् मुहूर्ते तव दर्शनलालसा वर्धते। अहं जानामि त्वं न आगमिष्यसि। किन्तु इदम् अपि जानामि मम शेषयात्रायाः शेषे त्वमेव अपेक्षमाणः स्थास्यसि। संसारे सर्वे जानन्ति त्वं मम भ्रातृपुत्रः। सर्वेषां समक्षं त्वं मम पदतले प्रणमसि अहम् आशीर्वदामि। किन्तु, अहं जानामि, त्वं प्रकृतेः परः जडातीतः, मायातीतः, परमहंसः। जीवनस्य शेषसोपाने पदं संस्थाप्य तव निराकारोपस्थितिं

तव विभूतिसम्पन्नम् अग्निदेवं साक्षीकृत्य कथयितुम् इच्छामि जीवने कतिवारम् ईदृशे वह्निवलये जीवनं मे समर्पितं वर्तते।

द्वितीयः भागः

बाल्यकालम् अतिक्रम्य अहं कैशोरावस्थायां पदं स्थापितवती। किन्तु बहुपरिजनैः सखीभिः च परिवेष्टितायाः मम बाल्यचापल्यम् इतोऽपि न गतम् । हासपरिहासैः क्रीडाकौतुकैः मधुरमधुरालापैः च अस्माकं समयः गच्छति। मम पिता अत्यन्तश्रद्धालुः ए दद्याधर्मयुक्तो न्यायवान् राजा आसीत्। अतः नाना दिग्भ्यः बहवः ऋषयः मुनयः च अस्माकं राजभवने अतिथयः भवन्ति स्म। समेषां परिचर्याभारः मयि न्यस्तः आसीत्। मुनेः सिद्धमन्त्रस्य पुनः सिद्ध्यर्थं कोट्यधिकजपाय उपदिष्टा। तदारभ्य अहं प्रतिदिनं सूर्योदयात् प्राक् स्नानं समाप्य एकसहस्रे नित्यजपं करोमि। अद्य कश्चिदु आनन्दातिरेकः मया अनुभूतः। यतो हि कोटिमितः जपः अद्य समाप्तिं याति।

तृतीयः भागः

पूर्वं सखिमुखात् बहूनां राजपुत्राणां वंशानुचरितं मया श्रुतम्। तेषु भरतकुलश्रेष्ठः हस्तिनाधीश्वरः मां नितराम् अरोचत। तथापि 'कन्या वरयते रूपम्। स्वयंवरसभायां तस्य रूपदर्शनान्तरम् एव किमपि विचारणीयम् ।

ब्राह्ममुहूर्तं उद्यानसरोवरे स्नात्वा इष्टदेव्याः पूजनार्थं सखीभिः सह अगच्छम्। मनोवेदनां जापितवती देव्याः पदकमलेषु षमम मनोमतः पुरुषः रूपवान् भवेत्....इति। देव्याः मस्तकात् पुष्पं पतितम्। पूजकः तत् पुष्पं दत्त्वा अस्मत् ष् अम्नीष्टपूरणं भविष्यति राजपुत्रि”2

चतुर्थः भागः

तपस्विनः महाराजस्य वात्सल्यम् अनुदिनं वर्धतेतराम्। अधिकाधिकपुत्रलाभाय प्रतिवारं तस्य

अनुरोधः। प्रायः तस्य मनसि अग्रजस्य शतपुत्राणां सङ्ख्याधिक्यभयम् आसीत्। किन्तु तस्य अनुरोधः मया न स्वीकृतः। उक्तं च धर्मवेत्तारः अपि चतुर्थप्रसवं निन्दन्ति। यतो हि चतुर्थपुरुषसंसर्गेण नारी स्वैरिणी भवति। भवादृशः धर्मनिष्ठः कथम् अपत्यस्नेहेन अधर्मानुरोधं करोति इति।

पञ्चमः भागः

अयि कृष्ण! वारुणावन्तनगरस्य उत्सवपालनं जतुगृहदाहनं च तव अगोचरे नास्ति। तव कौशलेन वह्निवल्यात् सुरक्षिताः वयं निर्जनारण्यानीमध्ये छद्मवेशैः व्यचरामः। दुर्योधननियुक्तघातकेभ्यः आत्मानं रक्षन्तः वयम् अत्र तत्र इतस्ततः भूत्वा क्लेशेन जीवनं यापयामः।

अद्यापि स्मृतिशेषं न गता एकचक्रनगरस्य कथा। तत्र मम पुत्राः भिक्षावृत्त्या जीवनं निरवहन्। हठात् ज्ञातवन्तः वयम् अस्माकम् आश्रयदाता सङ्कटापन्नः। स्वप्राणान् रक्षितुं यतमानैः अपि अस्माभिः चिन्तितम्। प्राप्तोपकारात् अधिकः प्रत्युपकारः कर्तव्यः। अतः अहं तस्य ब्राह्मणस्य विपदः कारणं पृष्ठवती।

षष्ठः भागः

तदा सन्ध्या उत्तीर्णप्राया। पुत्रेषु कोऽपि न प्रत्यागतः। व्याकुलभावेन अहं तेषां प्रत्यावर्तनपथं प्रतिपालयामि स्म। क्रमशः रात्रिः घनीभूता। बहिः घनान्धकारः। तस्मिन् भस्मराशी शयाना चिन्तयामि किं मे पुत्राणां परिचयः समुद्घाटितः दुर्योधनेन क्षतिः न कृता खलु ?

नानासन्देहप्रसरे श्रियमाणा अहं कुटीरद्वारे श्रुतवती। श्मातः! अद्य वयं कामपि अपूर्वा भिक्षं प्राप्तवन्तः।”

सप्तमः भागः

राजः द्रुपदस्य जामातृणां पञ्चपाण्डवानां गोपनवासः समाप्तः। समग्रजगत् प्रकृतघटनाम् अजानात्। सौभाग्यस्य सूर्योदयः एतावत् शीघ्रम् एवम् अनाहूतभावेन आगमिष्यति इति पाण्डवैः अपि ज्ञातं न आसीत्। हस्तिनापुरात् पितामहस्य अग्रजस्य च सादरं निमन्त्रणं नीत्वा महामन्त्री विदुरः समागतः। पाण्डवाः जीविताः सन्ति, द्रुपदराजकन्यया विवाहिताः च सन्ति इति ज्ञात्वा आनन्दिताः पुरवासिनः नागरिकाः च अस्माकं स्वागतार्थं विपुलायोजने व्यस्ताः। जतुगृहदाहस्य घटनायाः परं देशवासिनां समस्तस्त्रेहं, सहानुभूतिं, समर्थनं च पाण्डवाः प्राप्तवन्तः। अहं चिन्तयामि यत् सुलक्षणां कृष्णां विवाह्य पाण्डवाः पुनः राज्यश्रियं लब्धवन्तः इति। वस्तुतः स्वयंवरे एव पाण्डवानां शौर्यं प्रकाशितम्। हस्तिनावर्तीं प्रति अस्माकं प्रत्यागमने कौरवाणां क्रोधः शतगुणितः स्यात्। तथापि तेषु मम तु क्रोधभावः न आसीत्।

अष्टमः भागः

विदुरस्य परिवारस्य समस्तसेवायत्नात् परम् अपि अहं गृहकोणे शय्यालग्ना आसम्। मनसि एका भावना दोलायते जितेन्द्रियः धर्मनिष्ठः च युधिष्ठिरः यूतक्रीडायां भ्रातृनए पत्नीम् अपि हारितवान् इति विश्वासयोग्यं नास्ति। यस्याः पत्न्याः उपरि अपरभातृणाम् अपि समानः अधिकारः वर्तते तान् अपृष्ट्वा एव तादृशेन विवेकवता युधिष्ठिरेण केन विवेकेन कृष्णायाः पणः स्थापितः ? स्वीयभ्रातृषु स्वस्य अधिकारः अस्ति एव इति मत्वा सः स्वीयां द्यूतदुर्बलतां चरितार्था कृतवान्। तथापि एतासु दुश्चिन्तसु, मम मनसि अपरा चिन्ता आगच्छति किं युधिष्ठिरेण एतादृशविपर्ययस्य अन्तः स्वीयभविष्यत् दृष्टम् आसीत् यत् येन सः सकलमपमानं हासपरिहासं च सहमानः स्वपथं

परिष्कृतवान् त्वम् अपि सर्वं जानन् अपि तस्मिन् सङ्कटपूर्णसमये तेषां रक्षणं न कृतवान्।

नवमः भागः

इतः पूर्वम् अपि अहम् एकदा मूर्च्छिता अभवम्। तदा राजपुत्राणाम् अस्त्रशिक्षा समाप्तप्राया आसीत्। राज्यस्य समेषां ज्ञानिनां गुणिनां विदुषां च समक्षम् आयोजिता कृतविद्यशिष्याणां विद्यापरीक्षा। एकस्मिन् सुसज्जिते विशालमञ्चे समासीना आसीत् विचारकमण्डली। अन्यस्मिन् मञ्चे आसीनाः राजपरिवारस्य गुरुजनाः पितामहः भीष्मः, माता सत्यवती, ज्येष्ठा गान्धारी, विदुरः, सञ्जयः, अग्रजः, कृपाचार्यः, अहं च।

दशमः भागः

चेतनां प्राप्य अपि दुःखं क्षणाय विस्मर्तुं न शक्ता अहम्। विदुरः दुःखेन अवदत् सन्धिप्रस्तावस्य निराकरणे अस्ति दुष्टमतिः कर्णः। पाण्डवानां क्षतिं सः सदा कामयते।" अहं किं कथयिष्यामि...? किमपि बोधगम्यम् न आसीत्। कर्णं प्रशंसितुं विवेकः बार्धा ददाति, निन्दितुं च मुखे भाषा नास्ति। यतो हि कर्णस्य परिचयः मया बहु पूर्व लब्धः आसीत्। मम कुमारीजीवनस्य स्नेहाङ्कितः सः। दूरे स्थितस्य तस्य अनुगमनं करोति मे पुत्रप्रेम्णा विगलितं हृदयं तस्य कपोले चुम्बित्वा, क्षात्रदीप्तशरीरस्य क्षतचिह्नं संवारयति वारं वारम्। तस्य निन्दनं नाहं सहे न वा तस्य कुकर्म मातृहृदये स्थानं लभते तथापि केवलम् अन्तर्दाहं सहे।

एकादशः भागः

पञ्चयोजनात्मके कुरुक्षेत्रप्रान्तरे महासमरस्य सज्जा सम्पूर्णा। महासमरः महता सम्भारेण समारब्धः। रणक्षेत्रस्य सविस्तरविवरणम् अहम् अपि शृणोमि स्म। पितामहः भीष्मः युद्धत्यागं कृत्वा शरशय्यायां निपतितः। अनन्तरं कौरवाणां

गुरुः द्रोणाचार्यः युद्धवान्। ततः कर्णः सेनापतिपदे अभिषिक्तः। तदा तु भयेन उद्वेगेन आतङ्केन च मम समग्रसत्ता मृतप्राया जाता। अहं किमपि चिन्तयितुं न पारयामि। युद्धक्षेत्रे परस्पराह्वानसमये वारं वारम् अर्जुनस्य मुखात् 'सूतपुत्र' इति आह्वानं श्रुत्वा अपि कर्णः किमपि न प्रत्यवदत्। तेन मुखम् उद्घाट्य नोक्तम् यत् अहम् अपि कुन्तीपुत्रः एव इति। कथं वा कथयिष्यति सः ? पुनः पुनः अर्जुनेन भर्त्सितः; क्षत्रियैः उपहसितः अपि मौनेन सर्वं सोडवान् सोऽयं मम दुर्भाग्यपुत्रः।

कर्णार्जुनयोः युद्धस्य भयोत्पादकविवरणं श्रुतवती। अर्जुनः तब आदेशेन भूमिलग्नस्य रथचक्रस्य उन्नयनसमये शरप्रयोगं कृत्वा कर्णं हतवान्। तस्य शरीरात् प्राणविमुक्तेः परम् अपि खड्गेन मस्तकम् अकृन्तत्। यदा पाण्डवानां जयध्वनिभिः गगनं मुखरितम् आसीत् तदा तृषार्त्ता रणभूमिः मदीयरक्तनिर्मितपुत्रकस्य क्षात्रशोणितम् अपिबत्। एतत् सर्वं श्रुत्वा अपि कथम् अहं जीविता अस्मि...? वारं वारं दुःखस्य वज्राघातं सहं साहं मम हृदयं प्रायः वज्रादपि कठिनम् अभवत् ए अतः न विदीर्णं जातम्।

द्वादशः भागः

पाण्डवाः स्तब्धाः। कर्णः तेषां ज्येष्ठभ्राता आसीदिति श्रुत्वा ते शोकेन मूह्यमानाः जाताः। स्वहस्तेन स्वीयम् अग्रजं मारितवान् इति अर्जुनः आत्मान् अभिशपति। सर्वे मम उपरि दोषारोपं कृतवन्तः, किमर्थं मया तस्य परिचयः न प्रदत्त इति। तदा अपि कृष्णः।

त्वं तब दार्शनिकभाषया तान् बोधितवान्। सर्वे पुनः शान्ताः प्रसन्नाः च सञ्जाताः। कृष्णा च गोपनलध्ये धृत्वा हृदयं मे कलुषितम् आसीत् यः ग्लानिबोधः मम आत्मानम् अपीडयत् तस्मिन् मुहूर्ते सः अपसृतः। एकः स्वच्छः शुद्धः दिव्यभावः



मम सत्तायां सचारितः। मम समाप्सत्ता
प्रशान्त्या खिग्धा जाता। अहे मुक्ता अभवम्।
श्री कृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे! हे नाथ! नारायण!
वासुदेव !
जिह्वे पिवस्वामृतमेत्देव गोविन्द! दामोदर।
माधवेति।।”

॥ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 तुलनीय संस्कृत अस्ति, लैटिन एस्त, फारसी अस्त।
ये सभी समानार्थक हैं।

2 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 25

3 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 26

4 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 28

5 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 29

6 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 30

7 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 33

8 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 31

9 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 35

10 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 37

11 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 41

12 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 44

13 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 46

14 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 49

15 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 52

16 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 53

17 वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 54

18, वह्निवलय उपन्यास का सानुवाद समीक्षात्मक
अध्ययन, 55